# हिमालयी समाज बन्दोबस्तों में बदलाव

# : एक अध्ययन

## हिमालय स्वराज अध्ययन श्रृंखला– एक

हिमायली समाज के जीवन बन्दोबस्तों का आधार सदियों से प्रकृति के साथ सहचर्य से पैदा हुये हैं। उन बन्दोबस्तों में प्रकृति का संरक्षण और उसके नियमों का आदर प्रमुख मूल्य रहा है। लोक ज्ञान इसी संबंध से पैदा हुआ और सदियों से अपने गांवों तथा ग्रामीण जीवन के सफल संचालन से हिमालयी समाज ने यह प्रमाणित किया कि मनुष्य धरती–आकाश– वायु–जल व जीव जन्तुओं का शोषण किये बगैर सुखी व समृद्ध जीवन जी सकता है। इसके लिए प्रकृति का शोषण नहीं बल्कि पोषण करना आवश्यक है। वर्तमान समय में धरती के सबसे बड़े संकटों में मौसम परिवर्तन, धरती का गर्माना, बढ़ती गरीबी तथा साधनों पर अधिकार के संघर्ष से मानव जाति को मुक्ति दिलाने के उपायों को हिमालयी समाज के बन्दोबस्तों के आधार पर खोजने के प्रयास को आपके सामने प्रस्तुत करते हैं।

स्वाधीन जन ही स्वाधीन पथ निकाल पाते हैं।''

# आभार

किसी भी शुभ–प्रक्रिया के घटित होने में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से कई व्यक्ति जुड़े रहते हैं। अतः हम उन सभी साथियों के आभारी हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से इस शोध प्रक्रिया की सफलता हेतु सहयोग दिया। बागेश्वर व अल्मोड़ा जिलों के विभिन्न ब्लॉक क्षेत्रों से संबंधित नागरिकों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या के बाद भी इस अध्ययन प्रक्रिया में संवाद की माध्यम अपना भरपूर सहयोग दिया। यह रिपोर्टनुमा दस्तावेज उसी का परिणाम है।

हिमालय स्वराज अभियान के शोध समूह के साथियों, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में जाकर अध्ययन प्रक्रिया की योजना से लेकर जानकारियों के संकलन करने तक कड़ी मेहनत की। यह रिपोर्ट उनके श्रम का फल है।

हम हिमालय स्वराज अभियान के सभी सदस्यों के भी आभारी हैं जो इस अध्ययन प्रक्रिया में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से भागीदार रहे। साथ ही हम आभारी हैं प्रकृति के, जिसकी अनुकूलता से भी यह संभव हो सका।

हम सैडेड दिल्ली व उन तमाम साथियों के भी आभारी हैं। जिनकी आर्थिक सहायता से यह अध्ययन पूर्ण हो सका।

भुवन पाठक
संयोजक
हिमालय स्वराज अभियान

# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. | अनुक्रम | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1 | आभार | 1 |
| 2 | साक्षात्कार दाताओं की सूची | 2–3 |
| 3 | अनुक्रम परिचय | 4 |
| 4 | प्रारम्भिक बात | 5–7 |
| 5 | मुख्य संवाद का सार | 7–25 |
| 6 | चर्चा | 25–29 |
| 7 | हिमालय स्वराज अभियान परिचय | 30 |


## परिचय :–


शोध कर्ता –● गिरीश तिवारी ● संजय कुमार

● मुकेश पन्त ● हेमन्त जोशी ● प्रकाश पाठक

टंकण एवं सहयोग – ● सुनीता जोशी ● कल्पना नेगी

● संदीप कुमार

संकलन – गोपाल

मार्गदर्शन – भुवन पाठक

द्वारा – हिमालय स्वराज अभियान, पन्त भवन गागरीगोल

जिला–बागेश्वर (उत्तराखण्ड)

# प्रारम्भिक बात

यह संकलन हिमालयी समाज की आकांक्षाओं, अपेक्षाओं व एक समृद्ध समाज की संरचना हेतु लोगों की राय का एक दस्तावेज है।

अपने लम्बे अरसे के सामाजिक, राजनैतिक जीवन में कार्यरत रहने के अनुभव से हम साथियों (हिमालय स्वराज अभियान) ने यह महसूस किया कि समाज के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक बन्दोबस्तों के अध्ययन की आवश्यकता है। ताकि भावी समाज की एक तस्वीर बनाने में सरलता हो।

हमने पाया कि हम जो भी सुनते, देखते, पढ़ते और परस्परता में संवाद करते हैं या हम व्यक्तिगत अनुभूति करते हैं। उसका श्रेय हमारे अपने जीने के संसार को ही जाता है। इसीसे हम बहुत सारी बातों को अपना लेते हैं और उसी के अनुरूप जीते हैं। इस आधार पर हम बृहत समाज से जुड़े ही होते हैं। हमारा सीखना–समझना भी इन्हीं दायरों के अन्दर–बाहर चलता है। यही दायरे हमें नियन्त्रित भी करते हैं। सजगतावश जीवन में ऐसे कई अवसर आते हैं जिसमें सवालों के जबाव के लिए नियन्त्रित दृष्टि से बाहर निकलने की आवश्यकता होती है इसी आवश्यकता से इस शोध की शुरूआत हुई।

किसी भी समाज के अध्ययन की राह इतनी आसान नहीं होती। इसमें काफी मशक्कत करती पड़ी। लम्बे विमर्श के बाद यह सूझा कि पिछले 50 सालों में समाज के विभिन्न बन्दोबस्तों में आये बदलाओं पर जन राय को जाना जाये। साथ ही इन बदलावों से लोगों की जीवन शैली में क्या बदलाव आया है, इसको भी जाँचा जाऐ। इसके लिए यह जानना आवश्यक हो गया कि 50 साल पहले समाज के बन्दोबस्तों की स्थिति क्या थी या लोगों की जीवनशैली क्या थी ? क्योंकि पचास सालों में एक नयी पीढ़ी धरती पर जी रही होती है और पहली पीढ़ी का अवसान हो चुका होता है। दुनिया किन नियमों से चलती है, यह अंतिम तौर पर तो नहीं कहा जा सकता है। परन्तु यह निश्चित है कि हर समाज की अपनी एक विश्व दृष्टि होती है। इनमें कोई एक दृष्टि सही है और शेष सब गलत हैं। यह मानने का कोई प्रमाण नहीं है, फिर भी इस विश्व दृष्टि की झलक पचास साल के अन्तराल में समाज में किस रूप में रहती है। इस बात पर भी ध्यान गया। हालांकि विश्व दृष्टि के आंकलन के लिए पचास साल का समय अन्तराल कोई मायने नहीं रखता। लेकिन हजारो सालों से चली आ रही दृष्टि का अपनी जगह हमारे जीने में एक महत्व तो बना ही रहता है। इस महत्व को जाने–अनजाने हम अपनाये हुए ही होते हैं क्योंकि शाश्वत मूल्यों की एक निरन्तरता होती है।

आज हमारा व्यापक समाज व जन, विज्ञान की, तकनीकी की मान्यताओं–व्यवस्थाओं से नियन्त्रित होकर प्रत्यक्ष खुशहाली परन्तु अप्रत्यक्ष दरिद्रता व गुलामी की तरफ जा रहा है। मान्यता है कि यह गुलामी ही साधारण मानव समाजों के लिए उचित व्यवस्था है। इस विचार से समग्र प्रकृति, उसके पर्वत, नदियां, झरने, वृक्ष, पशु–पक्षी,

कीट–पतंगे मनुष्य के उपभोग के लिए बने हैं। मनुष्य उन्हें जैसा चाहे रखे। यहां मनुष्य–मनुष्य के बीच भी फर्क है। कुछ मनुष्यों को ही मनुष्य माने जा सकता है, बाकी तो पशु व प्रकृति के समान हैं। यह मान्यतागत बदलाव भी इसी दुनिया की उपज है जिसमें आज हमारा समाज चाहे–अनचाहे संचालित हो रहा है।

ऐसी स्थिति में हम अपने स्वभाव के आधार पर नये राज्य के सपने को गढ़ने की कवायद करते हैं तो निश्चित रूप से अपने देश के समाज की परम्पराओं, मान्यताओं, विधाओं व बन्दोबस्तों पर एक नजर डालने की आवश्यकता है। यही काम पिछले शतक में गांधीजी ने किया। जहां उन्हें समाज के पुरूषार्थ व सृजन में आयी कमी दिखती थी वहीं समाज की आन्तरिक शक्ति व उसकी सृजन शक्ति भी दिखती थी। उन्होंने समाज की ज्ञान परम्परा, जीवन परम्परा के महत्व को समझा और उसे वापस लाने का प्रयास किया। इससे समाज का भय मिटा, हीनता घटी, आत्मबल व रचना की इच्छा जागी। समाज के विश्वास को प्रतिष्ठा मिली।

प्रत्येक समाज की स्मरण शक्ति की अपनी परंपरा होती है। इसी के आधार पर सभ्यता की पहचान होती है। इसी परम्परा से मनुष्य को प्रेरणाएँ मिलती है। ये प्रेरणाएँ–पुरूषार्थ के रूप में समाज के जीवन, समाज के आदर्श, समाज के परस्पर व्यवहार, शिक्षा प्रणाली, दर्शन, शिल्प, कृषि, संगीत, स्वास्थ्य–ज्ञान, घर, घर की रचना–शिक्षा–सुरक्षा–वैभव, परिवेश, परिवेश के प्राणी, पशु–पक्षी, कीट–पतंगे, पालतू–प्राणियों, जीवों एवं वनस्पतियों के प्रति दृष्टि, शिष्टाचार, राज्य व्यवस्था, राजनीतिक तन्त्र, समाज के विविध समुदायों की स्थिति व उनके परस्पर सम्बंध, सम्मान, विश्वास, सहनशीलता, सौन्दर्य–कुरूपता, मृत्यु परम्परा, अनुसंधान व भले–बुरे की पहचान की अभिव्यक्ति करती हैं। इस स्मरण शक्ति परम्परा का एक अपना इतिहास होता है ; एक सभ्यता की दृष्टि, विश्व दृष्टि होती है, जो समाज को विभिन्न बंदोबस्तों के माध्यम से संचालित करती है। अतः जो भी समाज अपनी उक्त परम्परा से कटता है तो उसे एक नयी विश्व दृष्टि की आवश्यकता होती है, अन्यथा उसके अभाव में समाज का पराभव होता है।

अपनी विश्व दृष्टि से अलग होने का ही परिणाम है कि आज हम 21वीं सदी में पहुंचने के नारे जोर–शोर से लगा रहे हैं। विकसित व सभ्य होने के हमारे मापदण्ड आधुनिक मान्यताओं से प्रेरित हैं। ऐसी आधुनिक व्यवस्थायें जिनमें कुछ लोगों का तथाकथित सभ्य होना व कुछ लोगों का तथाकथित असभ्य होना बना ही रहने वाला है। विकास की यही नवीन अवधारणा जो आज सड़क, बिजली, पानी की सुविधाओं को भी मुहैय्या नहीं करा पा रही, लगता है कि हमने उसी अवधारणा को मूल अवधारणा के रूप में मान लिया। आधुनिक विकास के स्तम्भ वर्तमान लोकतन्त्र व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था, शिक्षा पद्धति, न्याय प्रणाली, बाजार व्यवस्था, में समाज कितना सुखी व समृद्ध हो रहा है यह सर्वविदित है। जैसे–जैसे तकनीकी बढ़ रही है, बन्दोबस्तों का नियन्त्रण उतना ही दूर होता जा रहा है। हम परसंचालित होते जा रहे हैं। सवाल यहाँ यह है कि विकास के विकसित तथा सभ्य होने के आधार क्या हैं ? लक्षण क्या हैं ? मनुष्य, समाज व प्रकृति का पोषक होना यह विकास है या उसका शोषक होना ? विकसित होने के नाम पर हमने अपने चारों तरफ किस तरह की दुनिया खड़ी कर ली है, जिसमें

चारों तरफ आतंकवाद, हिंसा व तनाव; करोड़ों लोगों को मूल आवश्यकताओं से वंचित रखना। चारों तरफ भय व भ्रष्टाचार का, अविश्वास का वातावरण खड़ा करना; प्रकृति की अनमोल चीजों – हवा, पानी, आकाश को प्रदूषित करना क्या इसी विकास की देन नहीं हैं ?

एक तरफ आधुनिक मान्यताओं से निकले वर्तमान बन्दोंबस्तों की दृष्टि हैं, दूसरी ओर प्रकृति व जीवन से आत्मीयता के वे संस्कार हैं जो अभी भी हमारे व्यवहार में परिलक्षित होते हैं; हमारे समाज बन्दोबस्तों को चलाते हैं। चीटियों, कौवों, कुत्तों के लिए अंश निकालना, सांड को मुक्त छोड़ना, मछलियों को खिलाना, नदियों के प्रति आदर, सार्वजनिक स्थल निर्माण कर पुण्य कमाना, चिड़ियों व विविध पक्षियों के चुगने के लिए दाना डालना, प्रकृति के प्रति गहरी आत्मीयता तथा परस्परता का भाव रखना आदि; ये सब हमारे ही जीवन पद्धति के अभिन्न अंग हैं। इस आधार पर मनुष्य सृष्टि का केन्द्र नहीं है बल्कि सहज अंश है। समस्त जीवन–रूप पूज्य एवं पवित्र है। जीवन रूपों की यह विविधता सम्मान योग्य है। यही दृष्टि एक अलग तरह के सामाजिक, आर्थिक बन्दोबस्तों का निर्माण करती है। यह इस शोध प्रक्रिया से सहज ही उभरकर आया।

आज हम द्वन्द्व में जी रहे हैं। न हम पूरी तरह से विकसित, सभ्य (आधुनिक परिभाषा के अनुसार) हो पाये हैं, न पूरी तरह अपनी दृष्टि, परम्परा को नकार पाये हैं। जब भी हमको अपने सभ्य, विकसित होने पर शक होने लगता है हम परम्परा की तरफ लौट आते हैं, और जब भी हम वैज्ञानिक दृष्टि अपनाने की कोशिश करते हैं तो हमें परम्पराओं में बिना समझे अंधविश्वास नजर आने लगता है। पिछले चालीस–पचास वर्षों में इतने सब विरोधाभासों के बावजूद इतना तो हुआ ही है कि हजारों युवक–युवतियों ने अपने व्यापक समाज से जुड़ने के प्रयत्न के साथ–साथ आधुनिक उपकरणों की सीमाओं को भी काफी हद तक समझ लिया है। ऐसे व्यक्ति अब आधुनिक विकास की चकाचौंध से उतने विस्मित नहीं होते जितने की 40–50 वर्ष पहले के पढ़े–लिखे शिक्षित होते थे। इनमें से बहुतों ने अपने पुरातन समय को भी समझने की कोशिश की है। आज भी गांव–समाजों के अधिकांश बन्दोबस्त अपनी समझ के आधार पर ही चल रहे हैं। लोगों की अपेक्षाओं व आधुनिक मान्यताओं द्वारा गढ़ी अपेक्षाओं का विरोधाभास साफ दिखता है। यह तथ्य भी इस शोध प्रक्रिया में काफी स्पष्ट रूप से उभर कर आया।

हम समाज में चल रही प्रचलित मान्यताओं का, समाज के संतुलित बन्दोबस्तों की रचना के अर्थ में सजगतापूर्वक मूल्यांकन कर सकें; यह प्रयास इस अभियान का एक हिस्सा है। **'हिमालय स्वराज अध्ययन श्रृखंला–1'** इसी प्रयास का प्रारम्भ है। पिछले दशकों में विविध बन्दोबस्तों व उनकी धारणाओं में मूलभूत परिवर्तनों का दौर चला है। ये इस अध्ययन श्रृंखला में छिटपुट प्रयास से लिपि बद्ध किया गया है। यह केवल शोध व संकलन का प्रारूप न होकर जन आकांक्षाओं व उनकी स्मृति का एक दस्तावेज है। अतः रिसर्च की भाषा का इसमें सर्वथा अभाव नजर आयेगा। इसको समाज में शुभ संवाद की प्रक्रिया का ही एक हिस्सा माना जाए।

# मुख्य संवाद का सार

## पहले और अब :–

- आजकल के समय में बड़े–बुजुर्गों की तो कोई अहमियत ही नहीं रह गई है। पहले के समय में एक गांव के किसी एक स्थान पर गांव के सभी समझदार एवं बुजुर्ग लोगों के साथ नौजवान पीढ़ी भी बैठती थी जहां नई पीढ़ी को बहुत कुछ सिखाया समझाया जाता था। लेकिन आजकल यदि किसी नौजवान के रास्ते में कोई बुजुर्ग आ गया तो वह उससे पीछा छुड़ाने का प्रयास करता है। जबकि पहले सभी कामों में बुजुर्गों की राय ली जाती थी और गांव के सभी कार्यों को करने का तरीका और समय भी वहीं पर तय किया जाता था।
- आज हमारे समाज में एक तरह का 'छोकरापन' हावी हो गया है। लोग पढ़–लिख गए हैं। पहले झोपड़ी में रहते थे लेकिन आज के दिन जिसके पास लैन्टर वाला मकान नहीं, उसे तो आदमी ही नहीं समझा जाता। और जिसके पास नौकरी नहीं है उसको भी आदमियों में नहीं गिना जाता।
- हमने वो जमाना भी देखा है जब आठ पसेरी गेहूँ, पांच पसेरी घी भी मिल जाता था लेकिन यदि आज आप किसी से एक किलो घी भी माँगो तो वो भी किसी के पास नहीं होगा। चाहे दो भैंस ही क्यों न ब्यायी हों। परसों तक वही घी दस रू0 किलो था और आज के दिन डेढ़ सौ रुपये किलो मिल रहा है। पहले बेचने के लिए यहां सबके पास ठैरा। गांव में जो भी लेता, 'वैंच–पैंच' लेता था। आजकल गेहूँ, चावल, आटे की गाड़ियों की गाड़ियाँ आ रही हैं। सड़ा आटा, चावल खा रहे हैं ; ऐसी जनता हो गयी है। सब जगह ऐसा ही हो गया है। पहले दुकानों में दूध की चासनी होती थी। ना, चाय का नाम ही नहीं था। दूध पिया गाढ़ा–गाढ़ा 'गटमट', छह छटांग के गिलास में।
- हम कभी तेल नहीं खरीदते थे। साबुन मोल नहीं लेते थे। घी में सब्जी कौलते थे। साबुन की जगह महिलायें भीमल की लकड़ी के झाग से सिर धोती थी। अब कौन धोता है ? हमने धो रखा है। कपड़े धोने के लिए मंडुवा चूट के उसके बाहर का छिक्कल एक कढ़ाई में गरम पानी में डालकर उबाला फिर उसमें कपड़े डाले। उसको 'धौक' कहते हैं। यही उस साबुन का नाम है। साबुन कैसा होता था ? पहले से घिन आती थी साबुन को देखकर। बाजार का तेल नहीं खाते थे। खेतों में सरसों बोया, उसका तेल खाते थे। औरतें सिर में 'घी' नहीं डालेंगी तो 'नौणि' (मक्खन) डालती थी। अब तो नये–नये आदमी हो गये हैं। पुराना जमाना क्या ठैरा; दही, दूध, खाया। नया ताजा माल खाया बस। अब तो नौकरी हो रही है।

- अब बीमारियाँ ज्यादा हो गयी हैं। टाइफाइट, फलाणाफाइट। थोड़ा पेट में दर्द भी हुआ तो जाओ डॉक्टर के पास, लगा दो सुई। सिर दर्द हुई तो सुई। 'सिर दर्द होगा तो वही गोली, पेट दर्द होगा तो वही गोली'। पहले वैद्य लोग जड़ी–बूटी लाने वाले ठैरे, उसको पीसेंगे। अहा! लेकिन अब वैसी कोई बात ही नहीं बची।
- पहले बीमार होते थे तो कांप ज्वर आता था। जिसको 'एकनार' कहते थे। हर तीसरे दिन बुखार आता था। तीसरे दिन भेद किया तो ठीक हो जाता था। कभी भीगा, कभी धूप में रहा तो परहेज न करने से होता था। आजकल के रोगों की जड़ 'रूई का बिस्तर' है। रूई रोग की जड़ है। पहले से धान का पराल बिछाया, उसके ऊपर ओढ़ने के लिए एक चादर डाल दिया; खूब गरम होता था। पहले से घास की ढकी हुई झोपड़ी सी होती थी। अब ये लैन्टर है। अभी धूप है नहीं तो अन्दर ठण्डे से रहने जैसा नहीं होगा, इसलिए रूई का बिस्तर चाहिए।
- पहले आपस में मडुवा–मादिरा मिलकर खाया। आज के दिन तुमने खाया, नहीं खाया करके पूछने वाला कोई नहीं है। 'बस चाय के लिए पूछते है।'
- आज के समय में शिक्षा बहुत ऊँचे स्तर पर चली गयी है। विज्ञान ने बड़ी तरक्की कर ली है। लेकिन मेरा अनुभव ये है कि बुजुर्ग लोग आज नये लोगों की सभा में जाने में हिचकिचाते हैं। हमारी नवयुवा पीढ़ी को यह अहसास नहीं है कि इनके पास भी ज्ञान है। पहले के जमाने में एक वृद्ध, अनपढ़ बुजुर्ग आदमी का गांव–समाज में मान होता था। वह जो कह देता था सारे लोग उसकी मानते थे फिर चाहे वह कोई अध्यापक हो व अन्य पढ़ा–लिखा। दूसरे के बच्चे को अपने ही बच्चे की तरह प्यार दिया जाता था।
- गांव में शादी–बारात होती थी तो साधन–सम्पन्न लोग गांव की बेटी मानकर मदद करते थे। जब गांव का कोई व्यक्ति बीमार पड़ता था तो सारे गांव के लोग वहां जाते थे। आदमी इस संसार को छोड़ते वक्त आंसू बहाता था। इन लोगों के साथ मैंने सारा जीवन व्यतीत किया। आज दुनिया से जाते वक्त भी मुझे सहयोग दे रहे है ये कामना रहती थी। आज हमारे बगल में आदमी मर रहा है, लेकिन हमारे घर में टी0 वी0 चल रहा है। पड़ोस में जाने की भावना में बदलाव आया है।
- पहले लोगों की अलग ही महफिल होती थी। बुजुर्ग तम्बाकू पीते थे। बच्चों को काथ–आणे सुनाते थे। मेलों में भगनौल होता था। दूर–दूर से लोग पैदल चलकर आते थे और चार–पांच दिन तक रहते थे। रात भर कथा, भगनौल, चांचरी होती थी। आदमी भी, औरतें भी धार्मिक स्थान में जाकर दो–दो, तीन–तीन दिन के मेले में बड़े आराम से रहते थे। झगड़े का नाम नहीं होता था। आज हम देखते हैं, कहीं पर रामलीला होती है तो लीला बाद में होती है, झगड़ा पहले हो जाता है।

- आज समय से खेती नहीं हो रही है। पहले जब एक का जम जाता है तब दूसरा खेतों में बैल लेकर आता है। पहले ऐसा नहीं हुआ करता था। गांव का प्रधान या सयाना पहले खेत देखने जाते थे। वो मिट्टी खाते थे, सूँघते थे। जब पता चल जाता था कि मिट्टी तैयार हो गयी है; तब सारे गांव का हल–बैल एक जमाव के साथ खेती का काम शुरू करता था। ऐसी संस्कृति व परम्परा थी। अब कहते हैं कि कुछ बन्दरों ने खा दिया, कुछ जानवरों ने खा दिया। इसीलिए तो खाया कि आपने पहले बो दिया। जब फसल एक साथ होती तो कितना खायेंगे, कितना नुकसान करेंगे। ऐसी मान्यता थी। पहले एक दूसरे से बातचीत होती थी। अब लोग एक–दूसरे से बात ही नहीं करते।
- पहले लोगों में सामूहिकता, एकता, प्रेम व विश्वास था। लोगों के अपने जीने के तरीके, नियम, रीति–रिवाज थे। रोजगार की समस्या आज की तरह नहीं थी। लोगों के पास अपने पुश्तैनी काम (कृषि, पशुपालन, लोहारी, बुनकरी, शिल्पकारी) थे। हाथ के काम को महत्व दिया जाता था। आज हाथ के कामों के बजाय मशीन के कामों का महत्व बढ़ गया है। उससे कम समय में लोगों को अधिक लाभ मिल रहा है।
- झोड़ा, चाचरी, हुड़किया बौल, भगनौल, आणे–काथे, वाद्य यन्त्रों में : ढोलक, मुरली, हुड़का व छोलिया नृत्य मनोरंजन के साथ–साथ आपसी मेल व एकता की डोर से बांधे रखते थे। इनका जीवन जीने के साथ एक अद्‌भुत रिश्ता था। हुड़किया बौल में वीरता की कहानी सुनाई जाती थी। गांव के सभी लोग आते थे और खेतों में गीत के बोलों के साथ काम का आनन्द लेते थे, साथ ही कार्य की गति में बढ़ोत्तरी होती थी। भगनौलों में देवी–देवताओं से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर करते थे। झोड़ा, चाचरी व गीतों को शादी, त्योहार, मेले व ऋतु आगमन के अवसरों पर गया जाता था।
- पहले घी, दूध, दही खाते थे। अब कन्ट्रोल का पुराना सड़ा चावल खा रहे है। पहले घर की सब्जी खाते थे लेकिन आज बाजार की चल गयी है। आलू, प्याज, चावल, गेहूँ बाजार का है, केवल पानी घर का है। पहले खीर बनाते थे और एक थाली खीर में एक पाव घी डालते थे। अब एक छटांग भी नहीं डाल पा रहे हैं। हाँ, शराब जरूर पी लेंगे।
- बीस साल बाद फिर पुराना दौर आयेगा क्योंकि आखिर मनुष्य एक ही बार पेड़ के टूके में चढ़ता है लेकिन वो वहां पर कब तक रहेगा ? एक न एक दिन तो नीचे आयेगा ही। अतः इसी प्रकार हमारी संस्कृति भी आयेगी और हमारा विकास होगा।

# जनभावनायें

➢ भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस पार्टी, बहुजन समाज पार्टी आदि ने जात–पात को बढावा दिया है, हमारे पहाड़ को आपस में लड़ाया–टकराया है। हमारे यहां के लोग आपस में छोटे–बड़े भाई पुकारकर बात करते थे लेकिन अब इनके कहने से लड़ रहे हैं। अलग–अलग तरह का माहौल बन रहा है, इसीलिए हमारा विकास नहीं हो रहा है। कहीं घूसखोरी बढ़ी है तो कहीं भ्रष्टाचार।

➢ अब वह समय आ गया है जब होनहार नवयुवकों को, अपने क्षेत्र के आदमी को वोट दिया जाए। आजकल की पार्टियों से हमारा दिल नहीं लगता है।

➢ ऐसे लोग राजनीति में आयें, जो पैदल चलते हों, कन्ट्रोल का राशन खाते हों और क्षेत्र के विकास के लिए प्रतिबद्ध हों। ऐसे लोगों की आज राजनीति में आवश्यकता है।

➢ आजकल तो 'लम्बा चन्दन मधुर वाणी यही है गुंडों की निशानी' कहावत पर काम–काज चल रहा है लेकिन क्षेत्र में भ्रमण करेंगे तो आज भी आपको अच्छे ज्ञानी व्यक्ति मिल ही जायेंगे। योग्य आदमी की छवि से उसकी योग्यता का पता चल ही जाता है।

➢ ग्राम प्रधान और गुण्डे हैं। ग्राम प्रधानों को एक ही साल में बदलना चाहिए। आजकल ग्राम प्रधान वही लोग बन रहे हैं यहां जिसके दस यार हैं, उसके मामू, ससुराल वाले उसी को वोट दे रहे हैं। जिसका कोई नहीं है, वह वैसा ही रहा; उसको तीन वोट भी नहीं पड़ते हैं। कुल मिलाकर न्याय होना चाहिए, न्याय नहीं हो रहा है। फालतू का धन कमा रहे हैं। अब उससे कष्ट हो रहा है। पसीने का कमाया होता तो कोई कष्ट नहीं देता।

➢ हमारे गढ़वाल से लेकर कुमाऊं तक लगभग एक–डेढ़ लाख लड़के होंगे जिनको दार चीरने के लिए भी नहीं मिल रहा है। हाँ, शराब जरूर है। इसके लिए 'सरकार महान दोषी है।'

➢ कर्मचारियों का जल्दी–जल्दी तबादला (भगाना) करना चाहिए। नहीं तो मामला बिगड़ जाता है। मास्टर स्कूल में नहीं जाते। हमने कहा; हमारे बाप का क्या जा रहा है। दूसरे ने भी यही सोचा हमारे बाप का क्या जा रहा है। हो गया, ऐसे ही कहीं भ्रष्टाचार हुआ तो लोग सोचते हैं कि 'छोडो किसी से बुराई क्या लेनी'। हमने भी वैसे ही खाया, तुमने भी वैसे ही खाया। किसी का भला हो जाए, हमें क्या लेना।

➢ भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ना है तो ऐसी योजना बने कि जिले के अन्दर कम से कम दस–बारह लड़के हों धाकड़ पढ़े–लिखे लोग। जो दूध को दूध, पानी को पानी कर दें। दूध के तो रहें, पानी वाले सीधे जायें। पर ऐसा न हो कि कहीं शाम को उनकी भी शराब–हराब, बकरा, मुर्गी चल जाए।

➢ सरकार ने जो गलत कानून लागू किए हैं, उनके लिए हम सब एकजुट होंगे तो सरकार हार जायेगी। उसको वह कानून बन्द करना पड़ेगा। सरकार है कौन ? हम ही, तुम ही तो हैं।

➢ राजनीति अच्छी नहीं है। राजनीति अच्छी होनी चाहिए। सरकारी तन्त्र के साथ सरकारी कर्ता का भी दोष है क्योंकि सरकारी कर्ता से सरकार बनती है। अब सरकार को भी कैसे दोषी मानें। सरकार भी कहां–कहां देखे। सरकार तो जनता की भलाई के लिए पैसा देती ही है लेकिन जनता तक पहुंचने से पहले ही वो पैसा खा लिया जाता है और हम कुछ बोल भी नहीं सकते हैं। इतने मजबूत युग में जी रहे हैं, कि अच्छे आदमी दिखाई नहीं दे रहे हैं। अगर कहीं दिख जाएं तो हमारी आवाज नहीं खुलती है।'

➢ अब योग्य आदमी को कहाँ से चुनते हैं। जो गुंडा होगा वो पहले जीतेगा, वह सबकी आवाज बन्द कर देगा। हम किसी भले आदमी को बनाना भी चाहें तो हमें बनाने कौन देगा? क्योंकि हमें तो कोई कुछ समझता ही नहीं है। वहाँ बैठे लोगों का बड़ा दिमाग है। 'बड़े लोगों का बड़ा दिमाग होता है।' ये पहाड़ का आदमी तो पहाड़ को जानता है जिस प्रकार से जंगल का जानवर अपने रहने के स्थान को ठीक–ठाक कर रहता है उसी तरह जिससे वह न तो बारिश में भीग पाता है और न ही उसे किसी का डर रहता है। उसी तरह पहाड़ का आदमी भी पहाड़ में रहता है।

➢ गवर्नमेंट हमारी पूरी व्यवस्था ऐशो–आराम वाली और आधुनिक हो चुकी है उनको सब कुछ चाहिए। उनके सपने और खर्चे अपनी आय से चौगुने हो गए हैं। उन्हें जो भी दायित्व सौंपा जाता है, वे उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं।

➢ प्रशासन अलग अड़ता है, शासन अलग अड़ता है। प्रशासन सोचता है, मैं शासन को दबाऊँ वहीं शासन प्रशासन को दबाने के बारे में सोचता है। जब प्रशासन व शासन का तालमेल ही नहीं बैठेगा तो प्रजातंत्र का क्या होगा ?

➢ हम खुद को दोष देते हैं। हमारी नीति गलत है। हम अपनी नीति पर नहीं रहते हैं। नीति छोड़ देते हैं और दोष अपने को देते हैं।

# शिक्षा पद्धति

➢ आजकल के पढ़े–लिखे लोग इजा–बाबू कहने की बजाय मम्मी–डैडी कहते हैं। यह अपनी संस्कृति से हटना हुआ। जो ज्यादा पढ़–लिख जाता है, उसका गाँव में रहने को मन नहीं करता है। उसे भैंस का गोबर निकालना छोटा काम लगने लगता है इसलिए वह गांव से बाहर जाकर काम ढूंडने लगता है। अब ये सोचने का विषय है कि आज की शिक्षा हमें हमारी संस्कृति से जोड़ती है या हटाती है?

➢ 'जैसे भैंसे के दाम बढ़े, वैसे ही सरकारी मास्टरों के दाम बढ़े हैं।' पैसे तो बढ़ गये पर शिक्षा पर ध्यान नहीं गया।

➢ स्कूलों में खोले गए राशन–पानी का धन्धा खोल रखा है ये बन्द होना चाहिए क्योंकि इससे खाने–पीने में ही ध्यान बना रहता है। इसके अलावा बच्चों को डराना भी बन्द करना चाहिए।

➢ शिक्षा प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। यदि हमारे पास उजाला नहीं है तो हम अँधेरे में रहेंगे। शिक्षा तो प्रकाश फैलाती है। जैसे पहले विद्यालय नहीं थे तो शिक्षा भी नहीं थी। विद्यालय से ही हमको शिक्षा मिलती है। यदि हमारी शिक्षा प्रणाली संस्कृति से जुड़ी रहे तो ठीक है। हम अपनी संस्कृति को छोड़े जा रहे हैं, किन्तु शिक्षा तो ले रहे हैं। हम चाहते हैं कि आधुनिक शिक्षा के साथ हम अपनी संस्कृति को भी लेकर चलें।

➢ प्राइवेट स्कूलों में मास्टरों को तनख्वाह कम मिलती है। वह बेचारे मेहनत करते हैं। अपना टाइमटेबल सही करते हैं तो बच्चों का अनुशासन ठीक बना रहता है।

➢ इंग्लिश पढ़ाने वाले विद्यालयों में पढ़ाया जाता है कि गंगा हिमालय की गोद से निकलती है जबकि हमने पढ़ा कि गंगा को स्वर्ग से भगीरथ लेकर आये। उसका वेग ज्यादा था इसलिए शिवजी ने उसे अपनी जटा में रख लिया था। तब भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाये। अब यहां पर हमारी संस्कृति व शिक्षा में कितना अन्तर आ गया। दो अध्यापकों में बहस हो गयी। एक कहता है, मैं पढ़ाता हूँ गंगा स्वर्ग से निकलती है। दूसरा कहता है, तुम गलत हो गंगा हिमालय से निकलती है। हम कहते हैं कि दोनों ठीक हैं। गंगा जब स्वर्ग से निकली तो शिव की जटा में आ गयी। शिवजी उस समय हिमालय में थे। तब बर्फ में ही उनका आसन था। बर्फ से ही गंगा निकली तो हिमालय की गोद से ही निकली है। उस समय हिमालय स्वर्ग तुल्य था। लेकिन आज हम हिमालय की जड़ तक पहुँच गये हैं तो कहा जायेगा कि गंगा हिमालय की गोद से निकलती है। पहले साधन नहीं थे तो हम वहाँ पहुँच नहीं पाते थे इसलिए वह स्वर्ग तुल्य था।

➢ आजकल के विद्यालयों का आधार पैसा हो गया है। पैसे के हिसाब से ही कक्षायें भी हो गयी हैं। व्यावसायिक शिक्षा दी जा रही है। सरकारी स्कूल केवल नाम

मात्र के सरकारी स्कूल हैं। जो मंत्री स्कूल खुलवा रहा है उसी के बच्चे नैनीताल, देहरादून, इग्लैण्ड में पढ़ रहे हैं। शिक्षा का निजीकरण हो रहा है। निकट भविष्य में ऐसा होगा कि कमजोर वर्ग का व्यक्ति अनपढ़ ही रह जायेगा।

➢ शिक्षा का निजीकरण हो जाये तो बेहतर है। सरकारी विद्यालय के मास्टरों को दस–दस, बीस–बीस हजार रूपये मिल रहे हैं फिर भी वह स्कूल नहीं जा रहे हैं। कोई ठेका कर रहा है, कोई भोजन में लग गया है, कोई निर्माण कार्य में लग गया है। कभी सभा में जाना है, कभी भोजन लाना है, कभी भोजन बनाना है। अब हमारे बच्चे कब पढ़ रहे हैं ? कहाँ पढ़ रहे हैं ? कोई ज्ञानी नहीं हो रहा है। हाँ, रोज स्कूल जरूर जा रहे हैं।

➢ गढ़वाल में एक अनपढ़ महिला थी गौरा देवी। हिन्दी भी ठीक से नहीं बोल पाती थी। उसने चिपको आन्दोलन चलाया। सारे गढ़वाल मण्डल में चेतना जगाई। गढ़वाल में इतने हरे घने जंगल हैं, आबादी के इधर–उधर इतने पेड़ हैं। आप किसी के मकान को देख नहीं सकते। एक अनपढ़ महिला ने इतना प्रचार–प्रसार किया। चिपको आन्दोलन में महिलाओं को पेड़ों पर चिपकाया। ये भी शिक्षा का एक पहलू है।

# संस्कृति

➢ 'बाँज की लकड़ी की जड़ ही सही।' कितनी बड़ी बात है, इस बात में। यदि इन दो शब्दों पर कोई पी0 एच0 डी0 करना चाहे तो हमारी संस्कृति समझ में आ जायेगी। विज्ञान तो आज कह रहा है कि बाँज लगाना चाहिए। हमारे लोगों ने तो यह पहले ही सिद्ध किया हुआ है। 'बाँज की लकड़ी की जड़ ही सही, छड़ ही सही।' जंगल जाओ तो बाँज की लकड़ी ले आओ। टेड़ी भी जलेगी तो राख अच्छी बनेगी और अधिक समय तक रहेगी। आज बाँज के पौधे को राजकीय पौधे की मान्यता मिली है। कहा जा रहा है कि यह पौधा चार सौ गेलन पानी इकट्ठा करता है। हमारे बुजुर्ग कुछ बातें मजाक में भी कह देते थे। उनकी बात में तथ्य होता था न कि पाप व भ्रष्टाचार।

➢ हमारी धार्मिक संस्कृति के अनुसार एक पौधे को लगाना, कन्या दान, भू दान और गौ दान को सभी दानों से ऊंचा माना जाता है। यदि हम इस पर चलते होते तो दुःखी नहीं होते।

➢ हम अपनी वेश–भूषा व खान–पान से घृणा करने लग गये हैं। एक नवयुवक डिग्री ले रहा था तो उसके पिताजी खर्चा देने उसके पास पहुँचे। वह अपनी पोशाक धोती–कुर्ते में थे। तब किसी ने पूछा ये कौन हैं ? वो बोला कि 'मेरा नौकर है'। जिस बाप ने उसको जन्म दिया है। जवान बनाया है। उसे आप बाप नहीं कहेंगे। बल्कि उसे यह कहते हुए गर्व होना चाहिए कि ये मेरे पिता हैं और उनके जैसे अनपढ़ आदमी ने उसे इतनी ऊंची शिक्षा दी है। अगर वह ऐसा कह पाता तो तभी वहां से संस्कृति का विकास होता है।

➢ टी0 वी0 विदेशी संस्कृति का प्रचार कर रही है। सरकार को टी0 वी0 पर सेन्सर लगाना चाहिए, विज्ञापनों पर सेन्सर लगाना चाहिए।

# विकास

➢ सबसे पहले जिस घर में हम रहते हैं, उस घर का विकास हो। इस विकास से अगला आदमी भी विकास सीखेगा।

➢ हम तो विकास इसी को कहेंगे कि सुविधाओं के साथ–साथ प्रत्येक इन्सान को उसके लक्ष्य के हिसाब से अपने लक्ष्य में कामयाब होना चाहिए।

➢ आज का मनुष्य अपनी आवश्यकतों से अधिक उत्पादन कर रहा है। और ये उत्पादन हवा में उड़कर नहीं होता है बल्कि उसके लिए जमीन के अंदर से उत्पाद निकालना होता है। हमने उत्पाद निकला लेकिन आपने उस उत्पाद को परिवर्तित करके गाड़ी बना दिया। हम सब कुछ इसी पृथ्वी से लेते हैं, इसी पृथ्वी में बनाते हैं और यहीं उसका समापन होता है। हम आवश्यकता से अधिक पृथ्वी से लेते हैं। उसका प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। पर्यावरण प्रदूषित होता है। फिर हम ये कहते हैं कि पर्यावरण सन्तुलित करो।

➢ पहले और आज की धरती में जमीन–आसमान का फर्क है। ऐसा कृष्ण के राज्य में भी नहीं था, विष्णु के समय में भी नहीं था लेकिन आज वो सब दिखाई दे रहा है। सुविधायें अपनी चरम सीमाओं तक बढ़ी हैं। यही सुविधायें हमारे दुख का कारण भी बन रही हैं।

➢ सड़कें आवश्यकता की चीज है। आप को भी चाहिए, मुझे भी चाहिए। परन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है यदि कहीं पर सड़क आयेगी तो उसके ऊपर वाला पहाड़ खिसक जाएगा।

➢ आज सुविधाओं का समय है। लोगों के पास गाड़ियां, मकान, बिजली, टी0 वी0, फोन तमाम सुविधायें हैं। जैसे–जैसे सुविधायें बढ़ी हैं, लोग आलसी बने हैं। कोई श्रम नहीं करना चाहता। सब कुछ पैसे से प्राप्त करना चाहता है। लेकिन पैसे से क्या–क्या प्राप्त किया जा सकता है ?

➢ सुविधायें हमको अल्प समय का लाभ तो देती हैं लेकिन उतनी ही हानि भी पहुंचाती हैं। आज सुविधाओं के भ्रम में हम नयी–नयी तकनीकों को अपनाते जा रहे हैं। जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने हैं।

➢ वर्तमान समय से विकास कार्यों के कारण प्रगति हुई है। विकास के पहलुओं अर्थात शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, बिजली, पानी व संचार सेवायें आने से जागरूकता बढ़ी है। पहले हम घरेलू उपचार पद्धति से उपचार करते थे लेकिन आज कुष्ठ रोग जैसी बीमारियों का भी इलाज संभव है। रोड से हम गांव के उत्पादन बाजार में ला सकते हैं। मनोरंजन के आधुनिक साधनों से समाज में खुलकर बात करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जहां सुख–सुविधा हो, वहां पर उनका थोड़ा–बहुत गलत प्रभाव तो होता ही है। जैसे चक्की आने से घराट बन्द हो गये। घराटों से हमें पौष्टिक आटा मिलता था। प्रदूषण भी नहीं था।

➢ हमें उस विकास की बात करनी चाहिए जो हमारे ग्रामीण परिवेश को संरक्षित करते हुए हमारी संस्कृति व संस्कार, जीवनशैली; बोली, रिवाज से जुड़ा हो। अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए स्थानीय संसाधनों का उपयोग करना चाहिए।

➢ विकास के इस दौर में हम संवेदना शून्य हो गये हैं। आपसी सहयोग कम होता जा रहा है। हम अपने परम्परागत उद्योग; डेरी, बकरी, मुर्गी, मत्स्य पालन व व्यापारिक पृष्ठभूमि को नहीं बढ़ा रहे हैं। जिससे बेरोजगारी बढ़ रही है। शिक्षा भी व्यावसायिक नहीं है।

➢ प्रकृति अपना सन्तुलन बनाये रखती है। हमने अपने विकास के लिए, अपने फायदे के लिए प्रकृति को नुकसान पहुँचाया है। हमने मार्ग बना दिया बहुत बड़ा विकास हो गया। हम इस रास्ते पर चलते थे, हमको विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां मिलती थी। हम थकते थे तो किसी छायादार वृक्ष के नीचे बैठकर फिर ऊर्जा ले लेते थे। यदि गाड़ी द्वारा जा रहे हैं तो ऊर्जा का केवल ह्रास हो रहा है आज विकास की यही परिभाषा है कि उससे विनाश भी होता है।

➢ टिहरी बांध को देखिए। यह 740 मीटर ऊँचा व 60 किलोमीटर चौडा है। अगर वह कभी टूट गया तो उससे कितना नुकसान होगा इसका तो अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। इस समय होने वाले विकास से हमारी आय बढ़ रही है, यहां से बिजली दिल्ली जायेगी, यू0 पी जायेगी। इस विकास से भविष्य में विनाश होगा। क्योंकि 'स्थायी चीज तो केवल प्रकृति ही है।'

➢ आज सुनने में आ रहा है कि ताजमहल दूषित हो गया है। ये हटाओ, ये पाइप लाइन हटाओ। जितना पैसा उस प्रोजेक्ट को बनने में लगा उससे अरबों ज्यादा रूपया हटाने में लग रहा है। उस समय वह वैज्ञानिक मर गया था, तब उसको पता नहीं चला। निकट भविष्य में उसके परिणाम क्या होंगे ? जबकि हमारे बुजुर्ग लोग मिट्टी के बारे में इतना ज्यादा जानते थे कि वे उसमें हाथ डालते ही सब कुछ बता देते थे।

➢ औखव के चावल में स्वाद होता है। छीजन नहीं होती है। चक्की के चावल में छीजन होती है। छोटे–छोटे टुकड़े हो जाते हैं। साबुत चावल का स्वाद अलग होता है, कड़िक का स्वाद अलग। हम पुराने आदमी हुए। हमको औखव में कुटे चावल अच्छे लगते हैं। नये लोगों को काम करना ठीक नहीं लगता। इसलिए चक्की का चावल ही ठीक लगता है। कूटा–पीसा चाहिये, स्वाद से कोई मतलब नहीं।

# चाख

➢ घराट को चले लगभग 200 से ऊपर वर्ष हो गये होंगे। पहले पिसाई के लिए चाख का उपयोग किया जाता था। हर घर में एक चाख हुआ करता था।

# जाति

➢ पहले ठाकुर, ब्राह्मण लोहारी के काम को, चिनाई के काम को छूत जैसा मानते थे। इन कामों को करने वालों को भी छोटा और अछूत माना जाता था। इसी जाति के लोगों ने मकान बनाया, पाल डाली, खाना बनाने वाला चूल्हा भी बनाया लेकिन सब करने के बाद वे कहते हैं कि हमारे घर के अंदर मत आना क्योंकि अब हमने पाठ कर लिया है। हालांकि आज वो थोड़ा कम हो गया है हमारे जमाने में बहुत था। आगे और कम होगा।

➢ जाति–पाति का भेदभाव पहले बहुत अधिक था। घरों में, चाय की दुकानों में भी चाय का गिलास हाथ में नहीं देते थे। जिसने चाय पी वो साफ करता था व जिस समय ले जायेंगे उस समय पानी के छींटे गिलास में डालते थे। काम करते वक्त हम शुद्ध हो गये और बर्तनों में खाना खाया तो अशुद्ध हो गये।

➢ अपने को बड़ा इसलिए मानते थे क्योंकि उनके पास जमीन–जायदाद थी। हम लोगों के पास जमीन कम थी, आबादी ज्यादा।

➢ हमने यह सुना है कि मास्टर हमारी जाति के लोगों को लकड़ी से पढ़ाते थे। उनके तख्त में लकड़ी से बता देते थे कि ऐसे लिख। आज तो ऐसा नहीं है। स्कूल में खाना बन रहा है, साथ खा रहे हैं। पहले अलग कर देते थे। ब्राह्मण, ठाकुर के हाथ का खाया भी अशुद्ध समझते थे।

➢ यह कहा जाता था कि जातियों का निमार्ण मनुष्य के शरीर के आधार पर हुआ है। जैसे सिर में बुद्धि होती है तो उसका अर्थ है–ब्राह्मण, बाजुओं में ताकत होती है तो उसका अर्थ है–ठाकुर, पेट का अर्थ भोजन की व्यवस्था करना और उसका प्रयोग करना तो उसका अर्थ है–वैश्य और पैर जो कि गंदगी में जाते हैं उसका अर्थ है–शूद्र। हम लोगों को सबसे नीचे का दर्जा दिया गया। अब अपमान तो सबको बुरा ही लगता है।

➢ शादी, बारात व अन्य कार्यों में ठाकुर, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र आदि सभी जातियों के बीच निमन्त्रण तो रहता है। लेकिन हम उनके यहाँ नहीं खाते हैं, वे हमारे यहाँ नहीं खाते हैं। क्योंकि समयानुकूल होने के कारण जैसा उन्होंने किया, वैसा हमने किया।

➢ जाति व्यवस्था से कोई संतुष्ट नहीं है क्योंकि इनसान तो एक ही है। यह व्यवस्था समाज में गलत है। क्योंकि उनको काटने पर भी उनके शरीर से वही खून निकलेगा जो कि हमारे शरीर से निकलता है।

# खेती

➢ नदी के किनारे बसने वाले गांव समृद्ध हैं, खुशहाल हैं। जो नदी से ऊपर हैं वहां खेती उतनी उन्नत नहीं हो पाती है। नदी के किनारे बेहतर खेती होती है। उपजाऊ भूमि की खेती बारिश पर निर्भर करती है।

➢ जब से विकास का मामला आया तब से धीरे–धीरे जैविक खाद का प्रचलन कम हुआ। मिट्टी की ताकत कम हुई। बारिश न होने पर भी जैविक खाद में बारिश महीना भर रुकती है।

➢ जंगल में पर्यावरण की पाबन्दी लगाने से खाद बनाने के लिए जंगल से आने वाला पत्ता अब बन्द हो गया है। जैसे जंगल में चीड़ होता है। पीरूल होता है। पीरूल तीन साल बाद काम करता है। तीन साल तक चला अच्छी तरह तो वह खाद का काम करता है। नहीं तो उसमें कीड़ा पैदा होता है।

➢ बकरी कई प्रकार की वनस्पति खाती है। इसलिए उसके गोबर से अच्छी खाद बनती है। यह खाद रासायनिक खाद को मात देती है। मिट्टी में नमी को बरकरार रखती है। यदि कोई पौधा कमजोर है तो आप इस खाद को डाल दीजिए, पौधा हरा–भरा हो जायेगा।

➢ पहले सामूहिक रूप से खेतों में एक जमाव के साथ काम होता था। लेकिन आज किसी के पास बैल नहीं, किसी के पास हल नहीं, किसी का खेती करने वाला नहीं। कहते हैं, बो देना होता तो क्या है। हमारी भावनाएं ही अपनी मां से ऐसी हो गयी हैं। भई, आपके पास थाली में बहुत बढ़िया भोजन रखा है। जिससे हमारा इतना बड़ा शरीर चल रहा है। आप प्रेम से खाइये जो शक्ति नष्ट हुई है, लौट जायेगी। अगर आपने पहले ही कह दिया कि पचता है या नहीं पचता है। रोटी भी कच्ची है, साग भी जला है। आपको उस भोजन से शक्ति प्राप्त नहीं होगी। वैसे ही मां से है।

➢ पहले खेती में जैविक खादों का प्रयोग किया जाता था। गोबर की खाद डाली जाती थी। इससे मिट्टी का संतुलन व अनाज की गुणवत्ता बनी रहती थी। साथ ही हमारी जलवायु भी प्रभावित नहीं होती थी। आज रासायनिक खादों से हमारी मिट्टी मृत हुई है; स्वास्थ्य व अनाज भी प्रभावित हुआ है। रासायनिक खादों व कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से कृषि के साथ–साथ वातावरण भी प्रभावित हुआ है।

➢ कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का आधार था। शिक्षा के प्रचार–प्रसार से लोग नौकरियों में जाने लगे। जनसंख्या बढ़ने से खेती योग्य जमीन कम होती गयी। उपराऊ जमीन है इसीलिए वर्षा न होने पर किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है। जिससे लोगों ने आधुनिक तरीकों व तकनीकी को अपनाया है।

➢ पहले हम हल–बैल की मदद से खेत की तीन बार जुताई करते थे और बीजों के संरक्षण के लिए उनको सुखाया जाता है। गाय के गोबर की खाद को अनाज में मिलाकर, रिंगाल की टोकरी को लीपकर भकार में रखते थे जिससे बीज सुरक्षित मिल

जाता था। बीजों को तुमड़े में भी रखा जाता था। वर्तमान में लोग कच्चे में ही फसल काटते–माड़ते हैं। उसमें सल्फास की गोली रखते हैं फिर भी बीज सुरक्षित नहीं मिलता है।

➢ हाइब्रिट बीजों के आने से हमारे यहाँ उत्पादन में कोई अन्तर नहीं हुआ है। हमारे यहां काश्तकारों ने पन्तनगर का मटर लगाया, वह जमा ही नहीं। पहले हम अच्छी किस्म के बीजों का आदान–प्रदान करते थे। वह हमारे लिए सफल विधि थी।

➢ स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाय तो पहले की अपेक्षा लोग आज ज्यादा बीमार रहते हैं। इसका कारण पौष्टिकता के बजाय स्वादिष्ट, पैकिंग वाला भोजन करना है। पहले लोग मडुवा, झंगोरा, मादिरा आदि मोटे अनाजों के प्रयोग से स्वस्थ व तन्दुरूस्त रहते थे। इस गिरावट के लिए आधुनिक कृषि जिम्मेदार है।

➢ खेती में हल–बैल का प्रयोग करते थे। हल, सानड़, बुरांश, बांज का बनाते थे। सिंचाई के लिए गूल को उपयोग में लाते थे। इसका निर्माण व देख–रेख गांव वाले करते थे। मौसम का चक्र ऋतुओं के हिसाब से चलता था। जिस कारण उस समय उपराऊ भूमि में मंडुवा, मादिरा व दालों की फसल अच्छी होती थी और तलाऊ भूमि में गेहूँ व धान की पैदावार अच्छी होती थी। सिंचाई के लिए पानी पर्याप्त हो जाता था। कीटनाशक के तौर पर नमक–पानी का छिड़काव किया जाता था।

➢ भारत में भुखमरी हुई तो अन्न पैदा करने के लिए वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजनों का बहुत अधिक प्रयोग कर पृथ्वी को अशुद्ध कर दिया। आज वही वैज्ञानिक कह रहा है कि जैविक खेती कीजिए। पहले खूब कीटनाशक दिये। उसने कहा भई बीज शोधन कीजिए, उसके बाद बोइये। बीज भण्डारों में भी दवा डालिए। आज खुद कह रहे हैं, वह प्रदूषित हैं। यह स्लोपॉइजन हो गया। क्या विज्ञान पहले नहीं जानता था ? इसका मतलब नहीं जानता था। आज जैविक खेती का भाव ही अलग है। वह दुगुने रेट पर जा रहा है। विश्व के बाजार में हम पहले से ही जैविक खेती करते थे। विज्ञान ने ही सिखाया कि इसमें यूरिया की कमी हो गयी, पोटास की कमी हो गयी; हमने डाल दिया। आज ऐसी स्थिति आ गयी कि उपज बढ़ाने के लिए जैविक खेती पर आ रहे हैं। अभी फिर भुखमरी होगी क्योंकि जिस खेत में दस कुन्तल गेहूँ होता था या धान होता था, आज वहाँ दो कुन्तल होता है। क्योंकि पृथ्वी तो प्रदूषित हो गयी है। अब संतुलन को बनाने में दो–चार साल तो लगेंगे ही।

➢ ''यह रासायनिक खाद बाप के लिए तो ठीक है लेकिन बेटे के लिए यह खेत को रेगिस्तान बना देगी।''

# वाद्य यन्त्र

➢ सतयुग में भगवान ने विचार किया कि हम दल जीतेंगे तो कैसे जीतेंगे ? क्या करेंगे ? तभी उन्होंने ढोलक की रचना की। धरमिया दास, कलिया लोहार की रचना की। उसी समय तूरी, रणसिंह, दमुवा बनाया गया। जैसे कहीं दल चला, बारात हो गयी। तभी से इसकी प्रथा चली है। भगवान के घर से चलकर ही यह प्रथा नरों में आयी।

➢ रणभूमि में रणसिंह बजता है। जब बारात जाती है तो एक जोश आता है। बारात जाते वक्त आगे लाल निसाड़ रहता है। दुल्हन को लेकर वापस आते हैं तो सफेद निसाड़ आगे रहता है। क्योंकि बारात शान्तिपूर्वक हो गयी। निसाड़ देवता को चढ़ाये जाते हैं। देवताओं को चढ़ाये बिना इसको शादी–ब्याह में नहीं ले जा सकते हैं।

➢ छोलिया नृत्य में हम बाजे को जिस भी तरह से बजायेंगे छोलिया लोग वैसे ही नाचते हैं। जैसे चलने वाला बाजा है तो वैसा नाच होगा। बारात आंगन से जा रही है तो अलग तरह का बाजा बजेगा और वैसा ही नाच होगा।

➢ जागर में जिस बाजे में देवतोई नहीं हुई उसको 'नौमत' कहते हैं। जिस बाजे में देवतोई होती है उसे 'नौरती बाजा' कहते हैं। हुड़के में जागर अन्दर लगती है, ढोल–दमुवा में बाहर। बाहर दुलेची लगेगी, फिर देवता नाचेगा।

➢ ढोल–दमुवा को, अगर देवता के कार्य में बैठे होंगे तो 'तामा–बिजेसार' कहते हैं। दमुवा ताँबे का होता है। तब उसे तामा बिजेसार कहते हैं।

➢ एक समय में बैंड वालों का प्रभाव ज्यादा हो गया था। अब कुछ कम हो गया है क्योंकि हमारा आदमी समझ रहा है कि इतना पैसा देने के बजाय पहाड़ी बाजा अच्छा है। पुराना बाजा ठीक है।

# देवी–देवता

➢ देवी–देवताओं को लोग परम्परा से ही मानते हैं। हमारे मुख्य देवता ग्वल व गंगनाथ हैं। मसाड़ किसी की भी रिश्तेदारी से आ जाता है वैसे ही नारसिंह हो गया।

➢ बलि प्रथा तो हमने नहीं चलायी। हमने बाप–दादा के समय से यही देखा। हमने सुना है पहले मनुष्य की बलि दी जाती थी। कहावत है कि एक गांव में एक बुढ़िया थी। उसका एक ही लड़का था। बलि की बारी बुढ़िया के परिवार की आयी तो बुढ़िया ने कहा; मुझे खा ले, मेरे बेटे को मत खाना। तब देवी ने कहा कि आज से तू ऐसा करना, बकरे व जतिये की बलि देना लेकिन यहाँ पर बग्वाल जरूर चलेगी। मनुष्य का खून जरूर चाहिए। पहले मनुष्य की बलि चढ़ाई जाती थी। यह तो बकरा ही है। यह हमने नहीं चला रखा है। बुजुर्गों के जमाने से चली आ रही है।

➢ मसाड़ वीर है। मसाड़ वीर हरू के संग भैलुवा होता है, गंगनाथ के संग झकरूवा होता है, डाना गोलू के साथ मसाड़ होता है। ये है जो खून खाता है। ये भी माना हुआ है। 'मसाड़ का प्रचलन तो अब बहुत हो गया।' यहाँ पर हर घर में मसाड़ है। जिसके घर में लड़कियां हैं, उसको पकड़ लेगा। किसी ने फांसी खा दी, वह लग जाता है। जो अधजाल में मर जाते हैं वो मसाड़ बन जाते हैं।

➢ गोलू, गंगनाथ, कल्याण बिष्ट सभी आदमी हुए। वे दबंग आदमी थे उन्होंने अच्छे काम किये, गरीब का साथ दिया। तभी देवता के रूप में माने जाते हैं, पूजे जाते हैं।

➢ जहाँ पर देवी–देवता का मन्दिर बनाया वहाँ हमने तिमिल का पेड़ लगा दिया, आम का पेड़ लगा दिया तो उसे काटते नहीं हैं। हरियाली वहाँ पर छायी रहनी चाहिए, चाहे कोई भी पेड़ हो। वह मन्दिर का पेड़ माना जायेगा।

➢ भूत व मसाड़ दोनों बलि लेते हैं। जो देवता बलि नहीं लेता उसको गोदान किया जाता है। जो भूत नहीं बनता वह श्राद्ध का अधिकारी होता है।

# स्वास्थ्य

➢ पहले जड़ी–बूटी की दवाई, आदमी की बीमारी को हटा देती थी। आजकल की दवा से बीमारी अभी ठीक होगी तो कुछ टाइम बाद फिर हो जायेगी। जब तक दवाई का प्रभाव रहेगा तभी तक ठीक रहेगा। उनका तो एक समय होता है। जड़ी–बूटी की दवाई रोग को साफ करती थी।

➢ आजकल बच्चे का सिरदर्द हुआ तो तुरंत एलोपैथिक दवा की गोली खा ली। तत्काल ठीक होना चाहते हैं। जो विद्धान माने जाते हैं, बहुत होशियार हैं, दस जगह जाते हैं, पढ़े–लिखे हैं वो तुरन्त पर विश्वास करते हैं। अरे भई, जो मर्ज है उसका टाइम फिक्स होता है। सूर्य के सुबह के प्रकाश में, बारह बजे के प्रकाश में, बारह बजे के प्रकाश से दो बजे के प्रकाश में कितना अन्तर होता है। वैसी ही प्रकृति है। उसी आधार पर प्रकृति, पृथ्वी में परिवर्तन आ रहा है। हमारे शरीर में भी परिवर्तन की गति वही है।

➢ सर्दी, जुकाम, बुखार जैसी बीमारियों में पहले नमक–पानी पीते थे। कोई ऐसा जड़ मूल हो तो कूटपीस कर पानी में भिगोकर खाया। दवाई जैसी कोई चीज नहीं थी। कहीं जाने का कोई मतलब नहीं था।

# पानी

- पुराने जमाने के नौले बंद हो गये हैं जबकि वे पानी के मूल स्रोत हुआ करते थे उनमें हमेशा पानी रहता था। अब जड़ से ही बँट गया है तो कहां से पानी आयेगा।
- जब गांवों में नल व हैण्डपम्प नहीं थे। लोग नौलों, धारों से पानी लाते थे। पानी के लिए दूर–दूर तक जाते थे। पानी के लिए आपस में लड़ते नहीं थे जिसको जब समय हुआ तब ले आता था। आपसी सहयोग से ही नौलों की सफाई होती थी।
- जंगल के कटान व नल, हैण्डपम्प आने के बाद प्राकृतिक स्रोतों के पानी का स्तर घट गया है। पहले प्राकृतिक स्रोतों के पास बांज, बुरांश, उतीस व अन्य पेड़ होते थे। पेड़ अपनी जड़ों से पानी सोखता है और गरमी में पानी छोड़ता है जिससे हमें बारहों महीने पानी मिलता था।
- आजकल प्राकृतिक स्रोतों का पानी पहले टंकी में भरा जाता है, फिर नल में आता है। उस टंकी में कभी दवाई नहीं पड़ती। समय की बचत व सुविधा के नाम पर नई पीढ़ी आलसी हो रही है। नल, टंकी व हैण्डपम्प के पानी की अशुद्धता से बीमारियां हो रही हैं।
- पहले लोग मूल स्रोत के नीचे जानवरों को नहलाने के लिए 'खाल' बनाते थे। वर्तमान में मूल स्रोतों का पानी नलों में चले जाने से 'खाल' नहीं दिखते हैं।
- पहले शीतकाल में अधिक वर्षा होती थी, हिमपात होता था। लेकिन अभी बीस साल से धीरे–धीरे पर्यावरण, पानी व स्वास्थ्य में बहुत अन्तर आया है।

# आणे

- 'ब्वैनी–ब्वैनी पर जामन निहाति' – दही.
- 'खानु–खानु कूनि, बी हू न धरन' – नमक.
- 'पा धार में द्वि पाणि नौव' – आंख.
- 'कान बिहर डाइ, सुनु छापन रूपु डाइ' – नींबू का दाना.
- 'नगमाता न अंगुली भिड़ मा गौ, बिना फूलक फल लागौ' – गान.
- 'कान में धरौ उसै जां, भिमें धरौ रिसा जां' – मसिबीन.
- 'अल की कुठरी पलक का किवाड़, लौंग का कुच्छा पानी की बहार' –दाडिमक दाड़.
- 'हरणा रे हरणा काटो–काटो चरणा, गुथड़ी में से रूड़ा' – लखमार.
- 'धाग सूर–सूर धाग यआ' – रास्ता.
- 'लाल घोड़ पाणि पी भै ऊड़ौ, सफेद घोड़ पाणि पीड़ हू जाडौ' – लगड.
- 'एक नानी–नानी छोरी सबनकै डाड़ मरै दे, के हौ' – खुस्याड़ी.

# चिड़ियां

➢ घुघुता, कौवा, गिद्ध, सिटौला, सुवा, शू, भिड़–कनौव, कटकौरी, करौली, उल्लू, गौरैय्या, कफु, मसु–माकुड़ी, तितुर, बाड़ मुर्गी।

➢ असौज, कार्तिक में मौसमी चिड़ियां का एक झुण्ड आता है। गेहूँ की फसल बोते वक्त आते हैं। इनको 'मल्या' कहते हैं। लोग कहते भी हैं कि 'मल्या जैसी चाल' है।

# जंगली जानवर

➢ घुरड़ होता है, काकड़ होता है, बाघ तो है ही, भालू हो गया, खरगोश, लंगूर।

➢ भालू ठण्डे इलाके में अधिक दिखता है। सुअर, बाघ जहां आलू होता है, उस जगह अधिक होता है।

➢ पहले घुरड़, काकड़ बहुत दिखते थे। अब बहुत कम हो गये हैं। मार दिये पता नहीं कहाँ गये। कभी–कभी एक वो भी आता था जिसे 'सिरौ–सिरौ' कहते थे। खच्चर जैसा दिखता था। बहुत तेज दौड़ता था। उसको कोई छू नहीं सकता था।

# फसल के शत्रु

- कितौला, कुरमुला, टिड्डा, किरथ।
- चूहा भी काटता है। ग्वाण भी काटता है।

# पहाड़ी खाना

- भट्ट का जौव, मादिरे का जौव, मडुवे की रोटी, जौ की रोटी, भट्ट के डुबुक, गेठी का साग, पिनालू, गडेरी का साग।

# खेल

- मनोरंजन के साधनों में पहले स्थानीय खेलों का महत्व अधिक था। लोग गिरी, गुल्ली डन्डा, कुश्ती, अड्डू, रन, बाग–बकरी, मुर्गा झपट, कन्चे खेलते थे। अलग–अलग गांवों के बच्चे आपस में मिलकर खेला करते थे। इन खेलों को खेलने के लिए गांव की बंजर भूमि, रास्तों व आँगन का उपयोग किया जाता था।
- क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल, टेनिस, बॉलीबाल को राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उछाल दिया है। इनमें बड़ी–बड़ी इनामी योजनायें रख दी हैं। हर कोई पुरुस्कार पाने की दौड़ में लगकर इन खेलों से पैसा व नाम कमाना चाहता है। आधुनिक खेल व्यावसायिक हो गये हैं।
- खेलों का प्रसारण टी0 वी0, रेडियो में होने से सभी का ध्यान इन खेलों में लगा है। इनको देखकर गांव का आम नागरिक उसी तरह का करना चाहता है या अपने बच्चे को वैसा बनाना चाहता है। इससे घरेलू काम–काज पर भी असर पड़ा है।
- पहले के खेल सरल होते थे व मानसिक थकावट को दूर करते थे। आधुनिक खेलों से आपसी चर्चा भी खत्म हो गयी है और जुए की प्रवृति को बढ़ावा मिला है। इसका असर गांव के बच्चो व हमारे रोजगार पर पड़ रहा है।

# पशुपालन

➢ पशुओं में भी बहुत ज्ञान होता है। वे अपने मालिक व आश्रय को पहचानते हैं। वह अपने मालिक को पहचानने की शक्ति रखता है। जानवर प्रकृति के साथ चलते हैं। वे प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करते।

➢ अब हमने गाय–बछिया कम कर दी है। हमारे यहां का इलाका सेन्चुरी के अन्दर आ गया है। सेन्चुरी वाले परेशान करते हैं। वहाँ से बाँज नहीं काटने देते। घास के लिए भी मना करेंगे इसलिए सब लोगों ने गाय, बछिया कम कर दी है। एक भैंस है, एक बैल है इन्हीं से गोबर की खाद को खेतों में डालकर गुजारा होता है। किसी ने बकरी रखी, किसी ने भैंस रखा, इसी से थोड़ा–बहुत गुजारा हो जाता है। जो गरीब है, उसको कोई देख ही नहीं रहा है। 'सरकार कोई भी आये बस, शोषण हो रहा है।'

➢ पहले बिछाली हमारे पास बहुत थी। चौड़ी पत्ती वाली बिछाली थी। जानवरों के लिए उसमें नमी रोकने की शक्ति थी। जानवरों को जाड़ों व बरसात में नमी न लगे ऐसी व्यवस्था थी। इसके लिए पशुपालकों को किसी ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं थी।

➢ प्रत्येक पशुपालक अपने पशु की बीमारी के बारे में जानता था कि कब, किस टाइम उसको कौन सी बीमारी होती है। उसी हिसाब से वह चारा और दवा देता था। जानवर चारे के रूप में दवा भी खाते थे।

➢ आजकल दूध विशेष कोई नहीं लगाता। लोगों के पास एक–एक भैंस है। एक बार यहाँ डेरी चली थी छह महीने में ठप हो गयी। अब दो भैंस पालने की ताकत किसको है। जंगल दूर है। बीस किलोमीटर दूर से घास कौन लायेगा जबकि पहले के लोग ऐसा कर पाते थे क्योंकि उन्होंने चाय की जगह दूध पिया था।

➢ हम पशुपालन से भी कुछ कर सकते हैं। जैसे बकरी पालन से भी आदमी स्वरोजगार कर सकता है। हमारे यहां पर कुछ ऐसे परिवार भी हैं जो बकरी पालन और दुग्ध उत्पादन से ही अपने परिवार का पालन–पोषण कर रहे हैं।

➢ आजकल के पढ़े–लिखे नौजवान गाय–भैसों को कहां देखते हैं। उनको तो घूमने–फिरने से ही फुर्सत नहीं है। नौकरी–नौकरी कर रहे हैं। लेकिन अब नौकरियां तो बची ही नहीं हैं।

➢ पहाड़ की पढ़ी–लिखी लड़कियां घर के काबिल हैं। उन्होंने घर का काम सीखा है। वे खेती–बाड़ी भी करती हैं। स्कूल भी जाती हैं। चाहे इण्टर हो, बी0ए0 हो या एम0 ए0 वह घास भी काटती है, गोबर भी निकालती है। पहाड़ में हर कोई काम लड़की कर लेती है, लड़के नहीं कर पाते।

➢ संतुलित आहार भारत के नागरिक नहीं खा पा रहे हैं तो हम पशुओं को कहां से खिलायेंगे।

# पशु उपचार

➢ दामड़ी– दामड़ी बहुत प्रकार की होती है। जैसे–खली दामड़ी, सूखी दामड़ी, छेरू दामड़ी, शेमयी दामड़ी, ल्वे दामड़ी (खून आना)। एक प्रकार की दामड़ी में गला बन्द हो जाता है। किसी में खाल भी निकल जाती है। सूखी दामड़ी में जानवर का शरीर सूख आता है। पहले इसके उपचार के लिए लोहार की भट्टी के खाल (बर्तन ठण्डा करने के लिए बनी) का पानी पिलाते थे। इससे खली दामड़ी ठीक होती थी। जड़ी–बूटियां भी खिलाते थे। जैसे– फड़क्याट हैं, कच्ची हल्दी, दूब, काली मिर्च, तिमिल का फूल, तिमूर की छाल, रिठौयी की पुरानी जड़ सड़ाके पीसकर दो गिलास पिला दी। आज गाय–भैंस बीमार हुए तो कहेंगे; जाओ–जाओ, डॉक्टर लाओ, लगाओ इन्जेक्शन।

➢ हम तो अभी भी गाय–भैसों के लिए घरेलू दवाई ही लाते हैं। डॉक्टर नहीं बुलाते हैं। नदी के किनारे, जंगल में, खेतों में मिल जाती है।

➢ छिपाड़े की बीमारी में जानवर सूख जाता है, खाना बन्द हो जाता है। छिपाड़ा (गांठ) गले में आ गया तो बचना मुश्किल हो जाता है। इसके इलाज के लिए लाल मिर्च, पहले का आग जमा ध्वार (धुआं), चूख व काली मिर्च को हल्का–हल्का पकाकर थाली में पतला–पतला बनाकर पिलाया जाता है। कहा जाता है कि दो–तीन बार पिलाने से छिपाड़ा निकल जाता है।

# वन प्रबन्धन

➢ हमारे यहाँ जो सेन्चुरी (बिन्सर सेन्चुरी) है। इस पर जनता का अधिकार होना चाहिए। जनता को लकड़ी, घास, छिलके की सुविधा होगी। सरकार का भी होना चाहिए, कुछ न कुछ, उसने भी कुछ आदमियों का रोजगार लगा रखा है।

➢ पहले जब वन पंचायत गठित होती थी तो सारे गांव वालों को इकट्ठा किया जाता था। उनकी राय के मुताबिक पांच पंच चुने जाते थे। उनके बाद एक सरपंच चुना जाता था। जुर्म कानून बनाना आदि अधिकार सरपंच के हाथ में था। वर्तमान वन पंचायत नियमावली में हमारे सारे अधिकार खत्म कर दिये गये हैं। अब पंचायत में ग्यारह पंच होंगे, बारह पंच होंगे। सात साल तक एक ही आदमी सरपंच बना है। अब तनख्वाह हो गयी है। पंच अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाता है।

(वन पंचायत आटी, अल्मोड़ा)

➢ ग्रामवासियों की नजर में वन समपत्ति है। इसकी रक्षा में कहीं भी ढील बरती गयी तो ग्राम वासियों का नुकसान है। यह ऐसी वन पंचायत है जिससे दस गांवों को पानी मिलता है।

(वन पंचायत आटी, अल्मोड़ा)

➢ चौकीदार के लिए गांव का हर आदमी अपनी मन–मर्जी से दस–दस रूपया देता है। जैसे किसी को टूटा–सूखा पेड़ दे दिया तो उससे आमदनी होती है। खास आमदनी नहीं है इसलिए हम सरकार से चौकीदार के लिए कुछ मदद चाहते हैं।

(वन पंचायत आटी, अल्मोड़ा)

➢ हमको लगा कि हमारे जंगल काफी कट गये हैं। आने वाले भविष्य में चौड़ी पत्ती के पेड़ कम हो जायेंगे। जानवरों के लिए चारा जुटाना भी मुश्किल होगा। इसलिए 2004 में हमने सुव्यवस्थित रूप से वन पंचायत का गठन किया। हमारी वन पंचायत में आठ महिला पंच हैं, नवां सरपंच अनुसूचित जाति से है। चुनने की प्रक्रिया में गांव के सारे लोग आते हैं। सरकारी कर्मचारी के रूप में पटवारी को बुलाया जाता है। पंच बनना है तो उसकी मदद से कम से कम दस लोग होने आवश्यक होते हैं। पंच लोग सरपंच का चुनाव करते हैं।

(वन पंचायत आटी, अल्मोड़ा)

➢ रिजर्व फॉरिस्ट में सरकार का हस्तक्षेप होता है। वन पंचायत में गांव वालों की भूमिका होती है। गांव वाले समझते हैं कि यह हमारा है, इस पर हमारा हक है। इसलिए उस को बचाना भी चाहते हैं। अन्य वनों में सरकार का दबाव अधिक रहता है। रिजर्व फॉरिस्ट के वनों में चीड़ के पेड़ ही मिलेंगे। लीसा, इमारती लकड़ी, सिलीपर का सरकार ठेका दे देती है इस तरह ये वन सरकारी उद्योग आधारित वन हैं। गांव वालों का ज्यादा जुड़ाव ग्राम पंचायत के वनों से दिखता है। वहीं से आवश्यकता पूर्ति भी होती है। इसलिए सरकार को वन पंचायतों को बढ़ावा देने की नीति बनानी चाहिए।

(वन पंचायत क्वीटी, अल्मोड़ा)

➢ हमारे यहां बांज, चीड़, काफल व बुरांश के पेड़ हैं। दो बार वृक्षारोपण हो चुका है। इसमें चौड़ी पत्ती वाले बाँज, भीमल, फल्याट के कम से कम दस हजार पेड़ लगाये हैं। इससे आम आदमी को निश्चित रूप से फायदा होगा। पानी की कमी कम होगी, चारा मिलेगा। गाय, बच्छियों को चारा मिलेगा तो गोबर होगा इससे उत्पादन व अनाज बढ़ेगा। साथ–साथ पर्यावरण की दृष्टि से भी फायदा होगा।

वन पंचायत क्वीटी, अल्मोड़ा)

➢ रिजर्व फॉरिस्ट के प्रति लोगों का नजरिया गलत है। वो सोचते हैं कि सरकार की चीज है। जितना हो सकता है कट जाये तो अच्छा है। जब भी सरकार को जरूरत पड़ती है तो वो अपने हिसाब से चलती है। कम से कम जितना मेरे हाथ लग जाए, मैं लूँ। वन पंचायत को लोग काफी हद तक बचा रहे हैं। उनको लग रहा है कि अपनी चीज है। जब जरूरत पड़ेगी ले लेंगे। मेरे बच्चों के लिए मेरा जंगल बरकरार रहेगा, मेरे बच्चों के काम आयेगा; लोग ऐसा सोचते हैं।

(वन पंचायत क्वीटी, अल्मोड़ा)

➢ आज सरकार सड़कों पर, पंचायत भवनों पर काम कर रही है लेकिन जंगल के बारे में कम सोच रही है। जंगलों का संबंध हमारी खेती से है, जानवरों से है, पानी के स्रोतों से है, प्रकृति से है। हमारे सारे स्रोत जंगल पर टिके हैं। सरकार ने जो वन नीति बनायी है, उसको चेन्ज करे। आम आदमी के हित में नीति बने। इसमें अधिकतम बात जंगल व खेती–बाड़ी से संबंधित कहनी चाहिए।

(वन पंचायत क्वीटी, अल्मोड़ा)

➢ सरकार का कानून बनता है, वो अपनी जगह है। आज तक हमारे जो नियम हैं उनको बदल देंगे तो दुष्परिणाम आने वाले हैं। हमने अपनी सम्पत्ति को पाल रखा है, सँभाल रखा है।

(वन पंचायत काण्डे वमन काण्डे, अल्मोड़ा)

➢ सरकारी वनों से हमको सूखी लकड़ी या पत्तीयां नहीं लेने देते हैं। एक गठरा लकड़ी पाँच रूपये में मिलता है। इसलिए इनके प्रति लोगों का नजरिया खराब है।

(वन पंचायत काण्डे वमन काण्डे, अल्मोड़ा)

➢ वन पंचायत पर सरकार का हस्तक्षेप जनता के हित में नहीं है। अगर तत्काल किसी को किसी चीज की आवश्यकता है यानी जंगल से लकड़ी चाहिए या पत्थर निकालने हैं तो साल भर लग जायेगा और हम लोग परेशान हो जायेंगे।

(वन पंचायत गुरूड़ाबाँज, अल्मोड़ा)

➢ नीति व नियम जनभावना के अनुरूप नहीं बन रहे हैं। यदि बन रहे होते तो जहाँ–जहाँ गांव का वन पंचायत है, वहां लोगों से राय ली जाती कि हम ऐसा नियम बनायें तो कैसा रहेगा। इसीलिए आज वनों का आन्दोलन हो रहा है। अगर संगठन मजबूत रहेगा तो सरकार को झुकना पड़ेगा। सरकार किसकी है ? हमारी ही तो है। हमीं में से जनप्रतिनिधि हैं। वह भी जानते हैं कि ऐसा होता है। वे भी तो गांव के हैं।

➢ (उत्तराखण्ड के कुमाऊं इलाके में कई जगह वनों के प्रबन्धन की बड़ी पुरानी परम्परा रही है। इन वनों को विभिन्न स्थानीय देवी–देवताओं के साथ जोड़ा गया है। जंगल न्याय की देवी, कोकिला माता को एक निश्चित समय अन्तराल के लिए भेंट स्वरूप सौंप दिया जाता है। ऐसा फैसला होने के बाद, जंगल को पवित्र मान लिया जाता है। और देवी के जंगल पर कब्जे की हिम्मत कोई भी गांव वाला नहीं कर सकता। इन वनों को 'देवी वन' कहा जाता है। 'देवी वन' से हरे पत्तों और हरे पेड़ों को काटने की मनाही है। लेकिन लोग टूटी डालों और पत्तों को बीन सकते हैं। जो इन नियमों का उल्लंघन करेगा, वह देवी का कोपभाजन होगा। लोगों के वनों में सरकार के प्रवेश ने संसाधनों के सामुदायिक स्वामित्व और स्वायत्तता पर एक बड़ा सवालिया निशान लगा दिया है। पुरानी वन पंचायतें, छोटी–छोटी अव्यावहारिक सी वन पंचायतो में बंटती जा रही हैं।)

(एच0 एस0 ए0, उत्तराखण्ड)

# जनसंख्या की दृष्टि

➢ जनसंख्या रोकने का प्रावधान हमारे धर्म में था। इतिहास बताता है कि द्वापर में प्रकृति में अरबों यदुवंशी थे। यदुवंशी जाति की एक अरब जनसंख्या भारत में पल रही थी। क्या कारण रहा होगा, इस पर जाइए। कुरूक्षेत्र के मैदान में कितने लोग मारे गये होंगे। अन्य जाति के कितने लोग रहे होंगे। उस समय उतने लोगों को पालने के लिए भारत माता राजी थी। क्या आज एक अरब जनसंख्या नहीं पल सकती है ? यदि धरती पर हमने प्रेम रखा होता, हमें उसके दुःख दर्द का अहसास होता तो आज भी असंख्य लोगों को पालने के लिए भारत माता तैयार है। आज जनसंख्या पर नियंत्रण की बात आती है। 1962 में भारत सरकार ने मृत्यु दर पर नियंत्रण किया था। गर्मियों में जब हम ऊपर वाले गांव में जाते थे तो हर गर्मी में आठ–दस बच्चो की मौत हो जाया करती थी लेकिन आज कोई बच्चा मर नहीं सकता है। माँ–बाप होशियार हैं। अब सरकार द्वारा जन्म दर को भी नियंत्रित किया जा रहा है।

➢ जनसंख्या कन्ट्रोल हमारे वेदों में भी था। स्वंय माता–पिता भी नहीं चाहते थे कि उनके अधिक बच्चे पैदा हों। उस समय लोग भगवान से कहते थे कि मुझे इस तरह का पुत्र दो या पुत्री दो और भगवान तथास्तु कहकर वैसा पुत्र या पुत्री होने का वरदान देते थे।

➢ हमारा व्यवहार, हमारी शिक्षा, खान–पान ठीक रहा तो धरती पर पैदा होने वाला कोई भी बच्चा भारस्वरूप नहीं होगा, वरदान होगा। अभिमन्यु की तरह संस्कारी होगा।

# चर्चा

## ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

आजादी के बाद इस देश के नेताओं ने देशवासियों के स्वभाव, रीति–रिवाज, परम्पराओं एवं देशी बन्दोबस्तों की उपेक्षा कर पश्चिमी (यूरोप, अमेरिका व सोवियत संघ) देशों के मॉडल को सामने रखकर विकास की नीतियाँ बनायी। अपने धरातली बन्दोबस्त, तन्त्र या व्यवस्थाओं की उपेक्षा की गयी। साथ ही देशज बन्दोबस्तों के प्रति शासन एवं प्रशासन की हेय दृष्टि रही। जिस व्यवस्था के विरोध में लोग अँग्रेजों से लड़े उसी व्यवस्था को यहाँ के शासकों ने आधुनिकता, शिक्षा, चिकित्सा सुव्यवस्था एवं विकास, सभ्यता के नाम पर जारी रखा।

देशज 'पंच परमेश्वर' वाली न्याय–सुरक्षा व्यवस्था को अँग्रेजों ने अवैज्ञानिक बताकर उसका झूठा प्रचार किया। पारम्परिक चिकित्सा पद्धति, कृषि प्रणाली, शिक्षा पद्धति, रीति–रिवाज व मान्यताओं को अवैज्ञानिक करार दिया गया। हमने प्रगति के मोह में व पिछड़ेपन से मुक्ति के भ्रम में उन पद्धतियों को बिना मूल्यांकन किये हीन मानकर छोड़ना शुरू कर दिया। प्रचलित न्याय–सुरक्षा प्रणाली को ऐसा साबित किया गया जैसे मानो वह प्रणाली भगवान– अल्ला ने भेजी हो। स्वर्ग–जन्नत से उतरकर आयी हो। इस देश में हर समाज में जो विविध चिकित्सा प्रणालियां, खेती करने के तरीके व जीने के विभिन्न समाजों के विविध बन्दोबस्त थे उनको एक जैसा बनाने का प्रयास किया गया। हमको ये समझा दिया गया कि तुम तो सपेरे , साधुओं, चोर, गरीबों व छुआछूत वाले देश के लोग हो। पिछड़े हो और अब सभ्य होना है। सभ्य होने का एक ही तरीका है हमारी व्यवस्थाओं को अपनाना। इन सब बातों को सिद्ध करने के लिए बाकायदा इतिहास लिखा गया। इससे पहले इस देश में इतिहास लेखन की परम्परा नहीं रही। यह अँग्रेजों ने शुरू किया। यहां तो ज्ञान हमेशा 'स्मृति परम्परा' के द्वारा हस्तान्तरित होता रहा। आज भी लोक मन के जहन में हजारों लोक कथाएँ, लोकगाथाएँ, रामायण, महाभारत, गीता, कहावतें, पत्थर की लकीर की तरह खुदी हुई हैं। इसका श्रेय 'स्मृति परम्परा' को ही है।

हमारी सृजन परम्परा (रचना) स्मृति आधारित, वाचिक थी। लोहारी पर, घराट बनाने पर, भवन बनाने पर, खेती करने पर, पारम्परिक इलाज पर, कोई लिखित विधि वाली किताब लोगों के पास नहीं थी कि लोहा कैसे गलाया जाता है या बीज कब बोना चाहिए ? आदि बातों को मौखिक रूप से वो व्यक्ति बताता था जिसे गुरू कहा जाता था। चित्रकार, संगीतकार भी मौखिक रूप से ही शिक्षा देता था। पहले के शिक्षक विद्यार्थी में लगन पैदा करते थे। इन सब व्यवस्थाओं; अपनी अस्मिता, गौरव परम्परा व बन्दोबस्तों के ताने–बाने के रहते इस देश पर शासन करना कठिन था।

इसलिए वैज्ञानिकता के नाम पर झूठा प्रचार व झूठी किताबें लिखकर भारतीय समाज के प्रति लोगों के मन में हीन भावना पैदा की गयी। गड़बड़ियों–कमजोरियों को बढ़ा–चढ़ाकर के पेश कर एक बुनियादी समाज की धरोहर को हीन करार दिया गया। इस का अर्थ ये नहीं कि पारम्परिक समस्त बन्दोबस्त पूर्ण व अच्छे हों लेकिन बिना मूल्यांकन के उनको नकार दिया गया। आत्मविश्वास के अभाव में भारतीय नेताओं की पश्चिमी चकाचौंध के प्रति रूचि ने समाज को आधुनिक व्यवस्थाओं के मार्ग में डाल दिया। जिसका परिणाम आज हमारे सामने है।

# वर्तमान स्थिति :–

➢ आज बहुत कम गाँव ऐसे हैं जहाँ मिलकर गाँव समाज के बारे में सोचा जाता है। सरकारी तन्त्र भ्रष्टाचार में डूब गया है। सरकारी व्यवस्था में कोई व्यक्ति सच्चाई, ईमानदारी से काम करना चाहे तो उसके लिए गंभीर संकट है। सरकारी तन्त्र व समाज के बीच विश्वास कम होता जा रहा है। लोग सरकारी तन्त्र को भ्रष्ट, शोषणकारी कहकर पुकारते हैं। इधर सरकार भी लोगों को शक की नजर से देखती है और नियंत्रण को ज्यादा बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकार के पास ईमानदारी, जिम्मेदारी, की कोई परिभाषा नहीं है। भ्रष्ट की, चोरी की परिभाषा जरूर है। इन नकारात्मक परिभाषाओं से हम खुद को परिभाषित करने लगे हैं; जैसे– जो चोरी न करें, झूठ ने बोले, घूस न लें आदि वह ईमानदार। यह नकारात्मक ढंग हमें एक–दूसरे पर भरोसा करने में बाधा पहुँचाता है। इसे बदलने की जरूरत है। विकास के नाम पर जो उपलब्धियां बताई जा रही हैं। उनका भी मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

➢ आज कहा जा रहा है कि धरती बीमार है। उसका तापमान बढ़ रहा हैं ओजोन लेयर में छेद हो रहा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। आने–वाले बीस–तीस सालों में पानी के लिए युद्ध हो सकता है आदि। आज हमें आधुनिकता के भ्रम ने बाँध रखा है। बीमार हुए तो दवा लो। इससे दर्द का अहसास कम होता है तो हमको विज्ञान की उपलब्धि व स्वस्थ होने का भ्रम होता है। 70 के दशक में हरित क्रान्ति का नारा देकर रासायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रचार करने वाले आज जैविक खाद की दुहाई दे रहे हैं। शिक्षा ग्रहण करने के बाद नौकरी लगने का भ्रम भी लगभग कम हो चुका है। प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जेबाजी की होड़ बढ़ रही है। इससे प्रदूषण भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी एवं पारिस्थितिकीय असंतुलन पैदा हो रहा है। मौसम की स्थिति बदलने लगी है। पानी के स्रोत, जलधारायें सूखने लगी हैं।

➢ आगामी 20–25 सालों में जनता को स्वच्छ जल व अन्न (जो कि बुनियादी सुविधायें हैं) मुहैय्या कराने की कोई योजना न सरकार के पास दिखती है न विज्ञान के पास। लाखों शिक्षित–अशिक्षित बेरोजगारों के रोजगार की भी कोई स्पष्ट न सही, धूमिल तस्वीर भी नहीं दिखाई देती है। वैश्वीकरण के इस दौर में प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जेदारी की होड़ ने युवाओं के रोजगार की संभावनाओं पर पानी फेर दिया है। इस पर सरकार भी मौन है।

➢ मान्यताओं का वैश्वीकरण हो रहा है। विभिन्न संचार माध्यमों व शिक्षण पद्धतियों के मार्फत एक जैसी मान्यताओं को गढ़ने की कोशिश की जा रही है। आज मान्यतायें शब्दों द्वारा गढ़ी जा रही हैं। पारम्परिक मान्यताओं को वाक्यों में कहना पड़ता था। अब मात्र शब्दों से काम चल जाता है। अधिकार, न्याय, लोकतन्त्र, अगड़ा– पिछड़ा, विकास जैसे शब्दों से हम नियन्त्रित हो रहे हैं। अर्थ पर ध्यान नहीं है। कहा जाता है कि पहले लोग अंध विश्वासी होते थे। कुछ भी मान लेते थे। और उसी अनुसार जीते थे। आज दुनिया वैज्ञानिक होने के भ्रम में मान्यताओं में जीती है और अहसास भी नहीं होता कि मान्यता में जी रहे हैं। पहले स्मृति परम्परा थी अतः वचनों (वाणी) की महिमा थी, आज लिखे शब्दों की महिमा है। चाहे स्कूल हों (स्कूल में सर्टिफिकेट से मनुष्य की योग्यता का मूल्यांकन), न्यायालय हों, या शास्त्र हों। पूरी समझ को शब्दों के जाल में फँसा रखा है। कहने को तो न्यायालय न्याय करते हैं पर सच्चाई यह है कि वहाँ न्याय का कहीं पता नहीं। वे तो न्याय करने की बजाय फैसला सुनाते हैं। हम शायद वैज्ञानिकता पर विश्वास के नाम पर इसको न्याय ही मानते हों।

➢ सामूहिकता के बजाय मनुष्य अकेलापन व असुरक्षा की भावना से ग्रस्त है। सामूहिकता का स्थान प्रतिद्वन्दिता ने ले लिया है।

➢ आज हम विज्ञान के यान्त्रिक चमत्कारों से और उससे तात्कालिक परिणामों व शरीर को आराम देने वाली सुविधाओं से चमत्कृत हैं। चाहे रासायनिक खाद हो या कोई नया तकनीकी उपकरण, हम इन सबकी, तुरन्त होने वाली चमत्कारी शक्तियों से चमत्कृत हैं। इस चमत्कार में उसके दूसरे आयामों, अन्य चीजों से संबंध व दूरगामी परिणामों की अनदेखी हो रही है। ये परिणाम तब पता चलते हैं जब देर हो जाती है। रासायनिक खाद की कमी तब पता चलती है जब खेत बंजर होने की तरफ चल चुके होते हैं। इस दृष्टि ने यह भ्रम फैलाया है कि इससे हमारा सोचने को दायरा बढ़ गया है। परन्तु आम आदमी के सोचने का तरीका एकांगी हो गया है। साथ ही चीजों को छोटे अन्तराल में देखने की आदत बन गयी है। आधुनिक यान्त्रिक विकास आने से सुविधाओं की रफ्तार तो बढ़ी है लेकिन साथ ही थकान भी बढ़ी है। व्यक्ति अधिकांश क्षेत्रों में पहले से ज्यादा नियन्त्रित, परसंचालित व परावलंबी हुआ है।

# क्या विकास अन्तविहीन होता है ?

## विकास व विकसित होने के प्रतीक :–

- पहले दादा–दादी, माताएँ बच्चों को कहानियां/आणे–काथे, अच्छे विचार सुनते थे। आज बच्चे कम्प्यूटर व टीवी0 के सामने बैठे रहते हैं।
- पहले धोती, कुर्ता, घाघरा, आँगण, पिछौड़, भुटिया, पैजामा पहनते थे आज टाइ–कोट, जीन्स पहनते हैं।
- पहले जमीन पर बैठकर कौदा, मंडुवा, भट्ट के डुबुक आदि स्थानीय भोजनों का सेवन करते थे। आज डाइनिंग टेबल पर चाऊमीन, पिज्जा, पेप्सी, कोला खाते हैं।
- पहले स्थानीय तिथियों, त्यौहारों को मनाया जाता था। आज टीचर्स डे, मदर्स डे, शादी की वर्षगांठ, बर्थ डे, वैलेन्टाइन डे मनाते हैं।
- पहले बीमारी का इलाज वैद्यों की मदद से जड़ी–बूटी द्वारा किया जाता था वहीं आज एलोपैथिक डॉक्टर करता है।
- पहले परिवार में बच्चे पैदा होते थे। आज गर्भपात होता है।
- पहले कच्चे रास्तों से पैदल चलते थे आज सड़क पर कार से चलते हैं।
- पहले परम्परागत मान्यताओं को मानते थे आज वैज्ञानिक मान्यताओं को मानते हैं।
- पहले लाठी, मुक्के, भाले से लड़ते थे अब बन्दूक, तोप बम से लड़ते हैं।
- पहले गांव के झगड़े पंचायत में निपटाते थे, आज हाइकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट में केस चलता है।
- पहले गोबर की खाद डाली जाती थी, घर का बीज था, धरती व खेती समृद्ध थी। अब उन्नत बीज, रासायनिक खाद व दवायें हैं लेकिन फिर भी धरती रोगी व अनाज दूषित है।
- पहले पारम्परिक खेल (अड्डा, कन्चे, गुल्ली डण्डा) अलग–अलग जगह अलग–अलग खेले जाते थे। स्थानीय होने की वजह से कम खर्चीले थे। आज क्रिकेट, बॉलीबाल, टेनिस खेलते हैं।
- पहले मनोरंजन के साधन स्थानीय थे। परस्परता में सामूहिक मनोरंजन होता था। आज अपने–अपने घरों में टीवी0 द्वारा मनोरंजन होता है।
- पारम्परिक सीख अपनी खपत के लिए पैदा करना और बचत करना सिखाती थी। आज बाजार में खपत विकास का प्रतीक है।
- पहले बच्चे सामान्य कपड़े पहनकर शिक्षा लेते थे। आज टाई–कोट, ड्रेस व मेज कुर्सी के साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं।
- पहले बच्चे पत्थर के मकान में रहते थे। आज सीमेंट के मकान हैं।

- पहले सौन्दर्य प्रसाधन में हल्दी व तेल का इस्तेमाल करते थे। आज विभिन्न तरह के क्रीम–लिपिस्टिक का प्रयोग होता है और हर कोस पर ब्यूटी पार्लर खुले हैं।

यदि विकास व विकसित होने के मापदण्ड ये हैं तो क्या मनुष्य पहले से ज्यादा सुखी–समृद्ध हुआ है ? क्या किसी की आवश्यकतायें पूरी हो पा रही हैं ? क्या किसी को लग गया है कि बस अब और आवश्यकता नहीं है ? ऐसा नहीं लगता कि अभी भी कम है। अर्थशास्त्र कहता है कि 'आवश्यकतायें अनन्त हैं व साधन सीमित'। इस आधार पर क्या कभी आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं या हम दरिद्र व दुःखी होने के लिए बाध्य हैं ? क्या विकास अन्तहीन है ? यदि हाँ तो हमारी दौड़ जारी रहेगी। यदि नहीं तो विकास क्या है ? आखिर हम विकास करके कहाँ जाना चाहते है ? आखिरी बिन्दु क्या है ? इस पर शायद अभी सोचने का जरूरत है।

# हिमालय स्वराज अभियान :
## संक्षिप्त परिचय

हिमालय स्वराज अभियान स्वराज मूलक समाज की स्थापना के लिए सम सामयिक मुद्दों पर विमर्श व राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक गैरबराबरी को कम अथवा खत्म करने हेतु बहसों का एक मंच है। इस अभियान के मार्फत जहाँ प्राकृतिक व मानवीय बन्दोबस्तों तथा पारम्परिक व आधुनिक व्यवस्थाओं को समझने व उन पर समाज के विविध मानव समूहों के साथ विमर्श होता है। वहीं गाँव स्तर पर वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था पर बहस चलाने व शिक्षा के क्षेत्र में सार्थकता आधारित मौलिक प्रयोग करने हेतु 'जीवनशाला' नाम से प्राथमिक स्तर के शिक्षण केन्द्रों का भी संचालन किया जाता है।

हिमालय स्वराज अभियान 'स्वराज मूलक' बंदोबस्त की स्थापना के लिए मानवीय बंदाबस्तों पर सार्थक संवाद स्थापित करने हेतु पिछले पांच वर्षों से प्रयासरत है।

## ''स्वाधीन जन ही स्वाधीन पथ निकाल पाते हैं।''